वेद-कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)

वेद-रहस्य

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'—इस मनुप्रोक्त वचनसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि निखिल धर्मोंका* मूल वेद है। वेद शब्द **'विद ज्ञाने'** धातुसे निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है प्रकृष्ट ज्ञान। वेद ज्ञान तथा विज्ञानका अनादि भण्डार है। भारतीय धर्म एवं दर्शनके मूलभूत सिद्धान्तोंका उद्गम-स्थल वेद ही है। वेद भारतीय संस्कृतिका प्राण है। यह भी सत्य है कि वेद-मन्त्र नितान्त ही गूढार्थक हैं, इसलिये उनके अर्थ-प्रकाशके लिये हमारे क्रान्तदर्शी ऋषि-महर्षियोंने अनेक स्मृतियोंका दर्शन, धर्मसूत्र तथा पुराणादि ग्रन्थोंकी रचना करके उनका उपबृंहण किया है। यही कारण है कि भारतीय धर्ममें जो जीवन्त-शक्ति दृष्टिगोचर होती है, उसका कारण भी वेद ही है। इसलिये कहा जाता है कि जिस ज्ञान-विज्ञानके कारण किसी समय भारत सर्वोच्च अवस्थाको प्राप्त हुआ था तथा जिस परम-तत्त्वका साक्षात्कार करके तत्त्वदर्शी ऋषियोंने सब कुछ पाया था, जिसके प्रभावसे विश्वमें सुख-समृद्धि तथा शान्तिकी स्थापना की थी और इस पुण्यभूमि आर्यावर्त देशको **'स्वर्गादपि गरीयसी'** बनाया था, वह सारी सम्पदा वेदमें ही संनिहित है। वेद अपौरुषेय एवं ईश्वरीय ज्ञान तथा समस्त विद्याओंका मूल स्रोत है। मनुमहाराजने कहा है—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥

(मनु० १२। ९७)

'वेदसे ही चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और

---

* यहाँ निखिल धर्मका तात्पर्य वेदकी ११३१ शाखाओंमें कथित धर्म ही समझा जाता है, न कि इतर धर्म-समूह।

शूद्र), तीनों लोक (भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक), चारों आश्रम (ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम)-की व्यवस्था की गयी है। केवल यही नहीं, अपितु भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान-कालिक धर्म-कर्मोंकी व्यवस्था भी वेदके अनुसार ही की गयी है।' वेद-धर्म उस ईश्वरीय ज्ञानकोशसे ही प्रकट हुआ है, जो अनादि और अनन्त है। इसलिये बृहदारण्यक श्रुतिमें कहा गया है—

अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः॥ (बृहदारण्यक० ४। ५। ११)

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चारों उस महान् परमेश्वरके श्वाससे ही प्रकट हुए हैं।' ऐतरेय ब्राह्मणमें भी कहा गया है—'**प्रजापतिर्वा इमान् वेदानसृजत्॥**' 'प्रजापतिने समस्त प्रजाओंके कल्याणके लिये ही वेदोंका सृजन किया है।' यहाँपर शंका हो सकती है कि वह ईश्वरीय वेदज्ञान मनुष्योंको कैसे प्राप्त हुआ? इसके लिये कहा जाता है कि सृष्टिके आदिकालमें कुछ उर्वर-मस्तिष्कवाले क्रान्तदर्शी ऋषि समाधिमें बैठकर उस दिव्य वेदज्ञानका प्रत्यक्ष दर्शन कर पाये थे। यास्काचार्यने निरुक्तमें लिखा है—

'**ऋषिर्दर्शनात्..........स्तोमान् ददर्श॥**'
(निरुक्त० २। ३। ११)

अर्थात् ऋषियोंने मन्त्रोंको देखा है, इसलिये उनका नाम ऋषि पड़ा है। जो मन्त्रद्रष्टा है, वही ऋषि है। कात्यायनने 'सर्वानुक्रमसूत्र' में लिखा है—'**द्रष्टार ऋषयः स्मर्तारः॥**' अभिप्राय यह है कि 'ऋषि लोग मन्त्रोंके द्रष्टा या स्मर्ता हैं, कर्ता नहीं।' मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी एक-दो नहीं, अपितु अनेक हुए हैं, जैसे गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ तथा भारद्वाज आदि। उनमें कुछ ऋषिकाएँ भी थीं; जैसे-ब्रह्मवादिनी घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, सूर्या तथा जुहू आदि। वेदज्ञान ईश्वरीय है, मन्त्रद्रष्टा ऋषि साक्षात्कृत जिस ईश्वरीय ज्ञानराशिको छोड़ गये हैं, वही वेद हैं। प्रारम्भमें संगृहीत-रूपमें वेद एक ही था, बादमें महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासजीने ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्ववेदके रूपमें उसका चार विभाग किया और अपने चार शिष्योंको पढ़ाया। अर्थात् पैलको ऋग्वेद, जैमिनिको यजुर्वेद, वैशम्पायनको सामवेद और सुमन्तुको अथर्ववेद पढ़ाया। उक्त महर्षियोंने भी अपने-अपने शिष्यों-प्रशिष्योंको वेद पढ़ाकर गुरु-शिष्यके मध्यकी श्रुति-परम्परासे वेदज्ञानको फैलाया है।

वेदकी प्राचीनता

'**अनन्ता वै वेदाः**' इस श्रुति-वचनसे ज्ञात होता है कि वेदज्ञान अनन्त है। कारण यह है कि वेदकी शाखाएँ ही इतनी विस्तृत हैं कि उनका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन एक ही जीवनमें सम्भव नहीं। इसीलिये 'महाभाष्य-पस्पशाह्निक' में उल्लेख है—

एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः।
एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाऽऽथर्वणो वेदः॥

अर्थात् बह्वृच (ऋग्वेद)-की २१ शाखा, अध्वर्यु (यजुर्वेद)-की १०१ शाखा, सामवेदकी १००० शाखा और अथर्ववेदकी ९ शाखाएँ हैं। इस प्रकारसे कुल मिलाकर वेदकी ११३१ शाखाएँ हैं। यद्यपि आज इन शाखाओंमेंसे अधिकांश भाग लुप्त हैं, फिर भी जो कुछ शेष बचे हैं; उनकी रक्षा तो प्रत्येक हिन्दूको किसी भी कीमतपर करनी ही चाहिये।

वेद गद्य, पद्य और गीतिके रूपमें विद्यमान हैं। ऋग्वेद पद्यमें, यजुर्वेद गद्यमें और सामवेद गीतिरूपमें है। वेदोंमें कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड विशेषरूपमें होनेके कारण इनको 'वेदत्रयी' या 'त्रयीविद्या'-के नामसे भी अभिहित किया जाता है। आरम्भमें शिष्यगण गुरुमुखसे सुन-सुनकर वेदोंका पाठ किया करते थे, इसलिये वेदोंका एक नाम 'श्रुति' भी है। तभीसे भिन्न-भिन्न वेदपाठोंका विधान भी किया गया है और मन्त्रोंमें एक-एक मात्राओंकी रक्षा करनेके लिये ऐसा करना आवश्यक भी था। यथा—

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥

अर्थात् महर्षियोंने वेद-पाठ करनेके आठ प्रकार बताये हैं—(१) जटा, (२) माला, (३) शिखा, (४) रेखा, (५) ध्वज, (६) दण्ड, (७) रथ और (८) घन—ये क्रमशः आठ विकृतियाँ कही जाती हैं। इन्हीं भेदोंसे वेदपाठी वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया करते हैं। वेद अनन्त होनेके साथ-साथ अनादि भी हैं। इसलिये कहा जाता है कि ईश्वरीय ज्ञान होनेके कारण किसी भी कालमें वेदका नाश नहीं होता; क्योंकि नित्य-अनादि

परमेश्वरका ज्ञान भला अन्तवाला कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। इसीलिये कहा भी है—'**नैव वेदाः प्रलीयन्ते महाप्रलयेऽपि॥**' (मेधातिथि) अर्थात् 'महाप्रलयकालमें भी वेदका लोप (नाश) नहीं होता।' अन्यत्र भी इसका उल्लेख है—

प्रलयकालेऽपि सूक्ष्मरूपेण परमात्मनि वेदराशिः स्थितः॥

(मनुस्मृति, कुल्लूक भट्टकी व्याख्या)

अभिप्राय यह कि 'प्रलयकालमें भी वेदज्ञानका अभाव नहीं होता, प्रत्युत वेदोंकी ज्ञानराशि परमात्मामें सूक्ष्मरूपसे पहले भी विद्यमान थी, अब भी है और आगे भी रहेगी—यह ध्रुव सत्य है।' अतः वेदका प्रादुर्भाव-काल निश्चित करना असम्भव-सा ही है।

वैदिक वाङ्मयका परिचय

वेद चार हैं—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। इनको 'मन्त्रसंहिता' भी कहते हैं। इन चार मूल वेदोंके चार उपवेद भी हैं—स्थापत्यवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और आयुर्वेद। इनमेंसे ऋग्वेदका उपवेद स्थापत्यवेद, यजुर्वेदका धनुर्वेद, सामवेदका गान्धर्ववेद और अथर्ववेदका उपवेद आयुर्वेद है। वेदके प्राचीन विभाग मुख्य रूपमें दो हैं—मन्त्र और ब्राह्मण। आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मणके अन्तर्गत आ जाते हैं। इसीलिये कहा है कि—'**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्॥**' (आपस्तम्ब श्रौतसूत्र)

आपस्तम्बके कथनानुसार मन्त्र और ब्राह्मण—ये दोनों वेद हैं। मन्त्रभागको 'संहिता' कहते हैं और अर्थस्मारक वाक्योंको 'ब्राह्मण'। वृक्ष और शाखाकी तरह जैसे शब्द और अर्थकी पृथक् सत्ता नहीं है; ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण-भाग भी वेद ही है, वेदसे पृथक् नहीं। ब्राह्मणका तात्पर्य है ब्रह्मसे सम्बन्धित विचार। इस विचारका प्राचीन नाम है 'ब्रह्मोद्य'। याग-यज्ञोंका विधि-विधान भी ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अनुसार ही होता है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ अनेक हैं, जिनमेंसे बहुत ग्रन्थ आज लुप्त हैं। ऋग्वेदके ब्राह्मण हैं ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतकि (शांखायन) ब्राह्मण। शुक्लयजुर्वेदका शतपथब्राह्मण प्रसिद्ध है। कृष्णयजुर्वेदका भी तैत्तिरीय ब्राह्मण अत्यन्त प्रसिद्ध है। सामवेदके कई ब्राह्मण हैं, जैसे ताण्ड्यब्राह्मण, आर्षेयब्राह्मण, षड्विंशब्राह्मण, सामविधानब्राह्मण, वंशब्राह्मण तथा जैमिनीय ब्राह्मण आदि। अथर्ववेदका गोपथब्राह्मण अति प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त भी और अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। जैसे दैवतब्राह्मण, कादेयब्राह्मण, भाल्लविब्राह्मण, काठक ब्राह्मण, मैत्रायणी ब्राह्मण, शाट्यायनि ब्राह्मण, खाण्डिकेय ब्राह्मण तथा पैङ्गायणि ब्राह्मण इत्यादि। ब्राह्मण-भागमें भी तीन विभाग हैं—ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। तात्पर्य यह है कि जिस विभागमें याग-यज्ञादिका विशेष विधान किया गया हो, वह ब्राह्मण है और जिस विभागमें ब्रह्मतत्त्वका विशेष विचार किया गया हो, वह आरण्यक और उपनिषद् है।

आरण्यक ग्रन्थ भी अनेक हैं, जिनमें ऐतरेय आरण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, कौषीतकि आरण्यक, शांखायन आरण्यक आदि प्रसिद्ध हैं। कुछ आरण्यक लुप्त हैं। वास्तवमें इनका आरण्यक नाम इसलिये पड़ा है कि ये ग्रन्थ अरण्यमें ही पठन-पाठन करने योग्य हैं; ग्राम-नगर आदि कोलाहलयुक्त स्थानमें नहीं। इसलिये सायणाचार्यने तैत्तिरीय आरण्यकके पाठ्यश्लोकमें लिखा है—

अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते॥

(तै० आर० भाष्य-मङ्गलश्लोक ६)

गहन अरण्यमें ब्रह्मचर्य-व्रतमें प्रतिष्ठित आर्य ऋषिगण जिस ब्रह्मविद्याका गम्भीररूपसे अनुशीलन अर्थात् पठन-पाठन किये, वे ही ग्रन्थ आरण्यकके नामसे प्रसिद्ध हैं। अरण्यमें ही निर्मित तथा पठित होनेके कारण इनका 'आरण्यक' नाम सार्थक ही है।

आरण्यकका ही दूसरा भाग उपनिषद् है। इसका अर्थ है ब्रह्मविद्या और प्रायः इसी अर्थमें यह शब्द रूढ है। विशरण, गति और शिथिलीकरण जिसके द्वारा हो, वही ब्रह्मविद्या उपनिषद् है। उपनिषद् भी संख्यामें बहुत हैं। अबतकके अनुसंधानसे दो सौसे भी अधिक उपनिषद्ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं और प्रकाशित भी हो चुके हैं। उनमेंसे प्राचीन एकादश उपनिषद् अति प्रसिद्ध हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य और बृहदारण्यक। इन एकादश उपनिषदोंपर आचार्य शंकरने भाष्य किया है।

वेदाङ्ग अर्थात् वेदके अङ्गभूत होनेसे या सहायक ग्रन्थ होनेसे इनको 'वेदाङ्ग' कहते हैं। जैसे (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छन्द और

(६) ज्योतिष। इनके द्वारा वेदार्थका ज्ञान होता है या वेदार्थको समझा जाता है। इसीलिये इनका नाम वेदाङ्ग पड़ा। आर्ष वाङ्मय बहुत विस्तृत है, परंतु इस संदर्भमें हमें कतिपय प्रमुख वैदिक साहित्योंका नामोल्लेखमात्र करके ही संतोष करना पड़ा है।

वेदोंके भाष्यकार

वेद-मन्त्रोंके अर्थ तीन प्रकारसे किये जाते हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। वेदोंका भाष्य यद्यपि अति प्राचीन कालसे होता आया है, परंतु किसी भी प्राचीन भाष्यकारने चारों वेदोंका पूर्ण भाष्य नहीं किया है। प्राचीन वेद-भाष्यकारोंमें—स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, हरिस्वामी, वररुचि, भट्टभास्कर, वेंकटमाधव, आत्मानन्द, आनन्दतीर्थ, माधव तथा भरतस्वामी आदिका नाम उल्लेखनीय है; परंतु इनमेंसे किसीका भी चारों वेदोंका पूर्ण भाष्य नहीं मिलता। वेदोंका पूर्ण भाष्य तो सायणाचार्यके कालमें ही हुआ है, उसके पूर्व नहीं। वेद-भाष्यकारोंमें सायणाचार्य ही एक ऐसे प्रौढ भाष्यकार हुए हैं, जिन्होंने चारों वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों तथा कुछ आरण्यक-ग्रन्थोंका महत्त्वपूर्ण सुविस्तृत भाष्य लिखा है। अन्य अनेक विषयोंपर भी वे ग्रन्थ लिखे हैं। सायणाचार्य वेदके मूर्धन्य विद्वानोंमेंसे एक थे, इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है।

सायणके वेदभाष्योंमें व्याकरण आदिका प्रयोग बहुल रूपमें हुआ है। सायण-भाष्यके आधारपर ही कुछ भारतीय तथा पाश्चात्त्य विद्वानोंने वेदभाष्योंकी रचना की है। यास्काचार्यने 'निरुक्त' में वेदभाष्यके मार्गको प्रशस्त तो किया है, किंतु कतिपय मन्त्रार्थके अतिरिक्त किसी भी वेदका भाष्य उन्होंने नहीं किया है। सायणने 'निरुक्त' का भी अपने वेदभाष्योंमें बहुल रूपमें प्रयोग किया है तथा प्राचीन परम्परागत अर्थ-शैलीको ही अपनाया है और उसकी पुष्टिके लिये श्रुति, स्मृति, पुराण तथा महाभारतादि ग्रन्थोंका ही प्रमाण उद्धृत किया है।

यज्ञ

'यज' धातुसे यज्ञ शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—देवपूजा, संगतिकरण और दान। इसलिये कहा गया है कि—**'अध्वरो वै यज्ञः॥'** (शतपथ० १। २। ४। ५) इन शब्दोंके द्वारा यज्ञका महत्त्व प्रकट किया गया है। अथर्ववेदमें भी कहा गया है—**'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः॥'** अर्थात् भुवनकी उत्पत्तिका स्थान यह यज्ञ ही है। शतपथब्राह्मण (१। ७। ४। ५)-में कहा गया है कि समस्त कर्मोंमें श्रेष्ठ कर्म यज्ञ ही है। इसी कारण यज्ञको ईश्वरीय यज्ञ भी बताया गया है—**'प्रजापतिर्वै यज्ञः॥'** ऐतरेय ब्राह्मण (१। ४। ३)-ने कहा है कि यज्ञ करनेवाले सभी पापोंसे छूट जाते हैं।

यज्ञमें देवता, हविर्द्रव्य, मन्त्र (ऋचाएँ), ऋत्विज् (होता), अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा और दक्षिणा आदिका ही विशेष प्राधान्य माना जाता है। यज्ञ और मन्त्रोच्चारणसे वायुमण्डलमें परिवर्तन हो जाता है, अखिल विश्वमें धर्मचक्र पूर्ववत् चलने लगता है। यज्ञमें मन्त्रोच्चारणसे चित्त शान्त और मन सबल होता है। यज्ञाग्निमें दी हुई आहुति वायुमण्डलके साथ मिलकर समस्त अन्तरिक्ष-मण्डलमें व्याप्त हो जाती है। उससे पर्जन्य उत्पन्न होता है। पर्जन्यसे अन्न और अन्नसे प्रजाकी वृद्धि होती है। यज्ञसे देवता प्रसन्न होते हैं, जिससे देवता यज्ञ करनेवालेको मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं।

आर्य लोग यज्ञप्रेमी थे। छोटे-छोटे यज्ञोंसे लेकर महारुद्रयाग, महाविष्णुयाग तथा महीनोंतक चलनेवाले अश्वमेधादिक बड़े-बड़े यज्ञोंको अत्यन्त धैर्यके साथ सम्पन्न करते थे। यथासमय उसका फल भी प्राप्त करते थे। अतः आर्यावर्त-देशवासियोंके लिये आज भी यज्ञका महत्त्व है ही, इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है।

परमात्मतत्त्वका विचार

वेदमें तीन काण्ड हैं—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। इन काण्डोंमेंसे अन्तिम ज्ञानकाण्डका महत्त्व सर्वोपरि है। ज्ञानकाण्डमें केवल ब्रह्म या परमात्मतत्त्वका ही विचार किया गया है। वेदोंके अनुशीलनसे ज्ञान होता है। वेदोंमें केवल ब्रह्मवादका ही प्रतिपादन हुआ है। इसलिये वेद ब्रह्मवादसे ओतप्रोत है; क्योंकि वेदमें यत्र-तत्र-सर्वत्र ब्रह्मवादकी ही उद्घोषणा की गयी है। वेदमें अनेक सूक्त हैं, जो ब्रह्मवादके ही पोषक हैं। इनमें पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त, अस्यवामीय सूक्त तथा नासदीय सूक्त आदि उल्लेखनीय हैं। ऋग्वेदका नासदीय सूक्त एक महत्त्वपूर्ण सूक्त है, जो संसार-बीजकी ओर संकेत करता है। यथा—

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋक्० १०। १२९। १-२)

'उस समय प्रलयकालमें न असत् था न सत्। प्राणधारी जीवादि भी नहीं थे। पृथिवी भी नहीं थी और आकाश तथा आकाशमें स्थित भूरादि सातों लोक भी नहीं थे। तब कौन कहाँ विद्यमान था? ब्रह्माण्ड कहाँ था? क्या दुर्गम तथा गम्भीर जल-समूह उस समय था? कुछ भी नहीं था। उस समय न मृत्यु थी और न अमरता, रात और दिनका भी भेद नहीं था। उस समय प्राण एवं क्रियादिसे रहित केवल एकमात्र सर्वशक्तिमान् ब्रह्ममात्र था; ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।'

वेदमें आये **'स्वधा'** शब्दका अर्थ माया है, जो शक्तिमान्‌में रहती है। स्वतन्त्र न होनेके कारण उसकी कोई पृथक् सत्ता नहीं है, इसलिये शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद है। इसीलिये **'तदेकम्'** शब्दसे **'एकमात्र ब्रह्म था'** ऐसा कहा गया है। इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि सृष्टिके मूलमें जगत्‌का कारण अनेक नहीं प्रत्युत एक ही है। अतः वेदका ब्रह्मवाद या अद्वयवाद उक्त ऋचाओंसे स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है।

आचार्य शंकरको कुछ लोग मायावादी मानते हैं, परंतु शंकराचार्य मायावादी नहीं प्रत्युत ब्रह्मवादी हैं। वह ब्रह्मवाद उनका अपना नहीं, बल्कि वेदका है। पुरुषसूक्तमें स्पष्ट कहा गया है—**'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।'** (ऋक्० १०। ९०। २) 'अर्थात् जो भूतकालमें उत्पन्न हुआ है तथा भविष्यत्कालमें उत्पन्न होगा और जो कुछ वर्तमानकालमें है, वह सब पुरुषरूप ही है।' अतः वह ब्रह्मवाद नहीं तो और क्या है? ऋग्वेद (१। १६४। ४६)-में उल्लेख है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

सत् ब्रह्म एक ही है। मेधावी लोग उस एक सत्-तत्त्वको ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि आदि अनेक नामोंसे अभिहित करते हैं। सुन्दर पंखवाले तीव्रगामी गरुड भी वही हैं। उसी तत्त्वको यम तथा मातरिश्वाके नामसे भी कहते हैं। क्या वह सत् (ब्रह्म)-तत्त्व एक ही है या अनेक? नहीं, वह एक ही है और उसीके अनेक नाम तथा रूप हैं। इस ऋचामें एकत्वमें बहुत्व और बहुत्वमें एकत्वका दर्शन होता है। एकेश्वरवाद भी वहाँपर स्पष्ट परिज्ञात हो जाता है। हंसवती ऋचा (४। ४०। ५)-में सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर विद्यमान और समस्त उपाधियोंसे रहित हंस (आदित्य)-के रूपमें परमात्माका वर्णन हुआ है।

ऋग्वेद (४। २६। १-२)-में **'अहं मनुरभवं०'** आदि ऋचाओंमें ऋषि वामदेवजी कहते हैं कि—'हम ही प्रजापति हैं, हम सबके प्रेरक सविता हैं, एक ही दीर्घतमाके पुत्र मेधावी कक्षीवान् ऋषि हैं। हमने ही अर्जुनीके पुत्र कुत्सको भलीभाँति अलंकृत किया था। हम ही उशना कवि हैं। हे मनुष्यो! हमें अच्छी तरहसे देखो। हमने ही आर्यको पृथ्वी-दान किया था। हमने हव्यदाता मनुष्यके सत्यकी अभिवृद्धिके लिये वृष्टि-दान किया था। हमने शब्दायमान जलका आनयन किया था। देवगण हमारे संकल्पका अनुगमन करते हैं।' ऋषि वामदेवके इन उद्गारोंसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वेदका ब्रह्मवाद ऋषियोंकी वाणीमें किस प्रकार मुखरित हो उठा था।

ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १२५ वें सूक्तकी ऋचाओंमें अम्भृण ऋषिकी पुत्री वागाम्भृणी (वाग्देवी)-की उक्ति भी ब्रह्मवादसे ओतप्रोत है। वे स्वयं कहती हैं—'मैं रुद्रों और वसुओंके साथ विचरण करती हूँ। मैं आदित्यों और देवोंको तथा मित्र और वरुण एवं इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण करती हूँ।' इस सूक्तमें ८ ऋचाएँ हैं और सभी ऋचाओंमें डिण्डिमघोषसे केवल एक ब्रह्मवादकी ही उद्घोषणा की गयी है अर्थात् सर्वात्मभावको ही अभिव्यक्त किया गया है।

ऋग्वेद (१। १६४। २०)-के **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** मन्त्रमें शरीररूपी वृक्षमें जीवात्मा एवं परमात्मारूप दो पक्षियोंके विद्यमान होनेकी बात कही गयी है। उनमेंसे एक फलभोक्ता है और दूसरा साक्षी। दोनोंको परस्पर अभिन्न-सखा भी बताया गया है। इसका वास्तविक तत्त्व-रहस्य वस्तुतः विम्बस्थानीय अधिष्ठान चेतन या कूटस्थ चेतन और प्रतिविम्बस्थानीय चिदाभास अथवा जीव-चेतनमें घटित हो जाता है। अतः वहाँ जीव और ब्रह्ममें वैसे ही भेद सिद्ध नहीं होता, जैसे प्रतिविम्ब विम्बसे भिन्न सिद्ध नहीं होता। इसलिये श्रुतिमें कहा गया है—**'एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥'** वह ब्रह्म एक भी है और बहुधा भी, जैसे चन्द्रमा विम्बरूपमें एक ही है, किंतु प्रतिविम्बरूपमें अनेक भी है। वेदमें भी कहा गया

है—'**इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते॥**' (ऋक्० ६। ४७। १८) 'इन्द्र अर्थात् ब्रह्म अपनी मायाशक्तिके द्वारा अनेक रूपोंमें हो जाते हैं।' वहाँ एकसे अनेक हो जानेका तात्पर्य परिणाम-भावको प्राप्त हो जाना नहीं है, अपितु औपाधिकमात्र है। श्वेताश्वतर-श्रुतिमें भी वर्णित है—'**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः।**' (श्वेता० ६। ११) 'वह एक देव (ब्रह्म) ही समस्त प्राणियोंमें छिपा हुआ विद्यमान है।' यजुर्वेदमें भी कहा गया है—'**योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्॥**' (यजु० माध्यन्दिनीय० ४०। १७) 'आदित्यमें जो वह पुरुष है, वह मैं ही हूँ।' वही वैदिकोंका अद्वयवाद या ब्रह्मवाद है। अथर्ववेदमें भी इसका वर्णन प्राप्त है—

'**स एति सविता महेन्द्रः**', '**स धाता स विधर्ता स वायुः**', '**सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः। सोऽग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः॥**' (अथर्व० १३। ४। ५)

'भाव यह कि वह इन्द्र अर्थात् महान् ब्रह्म ही सविता है, वही धाता तथा विधाता है, वही वायु है। वह अर्यमा है, वह वरुण है, वह रुद्र है, वह महादेव है। वह अग्नि है, वही सूर्य है और वही महायम भी है। तात्पर्य यह कि जगत्‌में सब कुछ वही है।' इससे बढ़कर वैदिक ब्रह्मवादका प्रमाण और क्या हो सकता है? इसलिये ऋग्वेदमें एक तत्त्वदर्शी ऋषि अपने इष्टदेवके साथ एकरूपताकी प्राप्तिके लिये उत्कट अभिलाषाको व्यक्त करते हुए कहते हैं—

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥

(ऋक्० ८। ४४। २३)

'हे अग्ने! यदि मैं तू हो जाऊँ और तू मैं हो जाय (द्वैतभाव सदाके लिये मिट जाय) तो इसी जीवनमें तेरे आशीर्वाद सत्य सिद्ध हो जायँ।' वही वेदोंका ब्रह्मवाद है और वह ब्रह्मवाद संहिता-भागसे लेकर ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, स्मृति-ग्रन्थों, धर्मसूत्रों, महाभारतादि इतिहास-ग्रन्थों तथा समस्त पुराण-ग्रन्थोंमें ओतप्रोत होकर विद्यमान है। यदि एक शब्दमें कहा जाय तो हमारे समस्त आर्ष वाङ्मयमें ही वैदिक ब्रह्मवादकी उद्घोषणा तत्त्वदर्शी ऋषि-महर्षियोंने बहुत पहले ही कर रखी है, यह निर्विवाद सत्य है।

'**स वेदैतत् परमं ब्रह्मधाम**'—ऐसा कहकर वैदिकोंने कैवल्य-मोक्षको भी स्वीकारा है और उसीको ही ब्रह्मधामके नामसे भी कहा है। उस ब्रह्मधाम या मोक्षपदको प्राप्त होकर वहाँसे पुनः न लौटनेको ही वैदिकोंने परम मोक्ष माना है—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५। ६)

वैदिक सप्त मर्यादा

वेदोंमें मानव-जीवन-सम्बन्धी असंख्य उपयोगी उपदेश भरे पड़े हैं, परंतु इस संदर्भमें हम केवल दो मन्त्रोंका उपदेशमात्र प्रस्तुत करके संतोष करेंगे। यथा—

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥

(ऋक्० १०। ५। ६)

तात्पर्य यह कि हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ, असत्य-भाषण तथा बारम्बार पापकर्ममें लिप्त होना—ये सातों ही महापातक हैं। बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे इनका सर्वथा परित्याग कर दें। इनमेंसे प्रत्येक ही मानव-जीवनके लिये महान् घातक हैं। यदि कोई एकमें भी फँस जाता है तो उसका जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है; किंतु जो इनसे निकल जाता है, वह निःसंदेह आदर्श मानव बन जाता है, यह निश्चित है।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

(ऋक्० ७। १०४। २२)

भाव यह कि 'हे परमात्मन्! उलूककी भाँति जिन लोगोंको दिनके दोपहरमें भी न दीखता हो तथा जो भेड़ियेकी तरह हर समय निर्बलोंको दबोच कर खा जानेकी घात लगाये रहता हो, जो चकवा पक्षीके समान सदा स्त्रैण रहता हो एवं जो गरुडके समान अभिमानमें चूर रहता हो और गीधके समान सर्वभक्षी हो तथा श्वान (कुत्ते)-की तरह परस्पर गृहयुद्धमें ही लगा रहता हो—ऐसे आसुरी वृत्तिवाले मनुष्योंसे हमारी रक्षा करो, उन दुष्टोंको पत्थरसे मार डालो।' प्रत्येक मनुष्यको वेदके इन दिव्य उपदेशोंका पालन अवश्य करना चाहिये, इसीमें सबका कल्याण है।

वेद ज्ञानका अगाध समुद्र है। उसका थाह पाना भला किसके लिये सम्भव हो सकता है? अर्थात् किसीके लिये भी नहीं। इसीलिये वेदकी अनन्तता सिद्ध होती है।